प्रवचन-९, गाथा-६, श्लोक-१३, सोमवार, फाल्गुन शुक्ल १२, दिनांक ०८-०३-१९७१

नियमसार, जीव अधिकार, उसमें परमात्मा सशरीरी अरिहन्त कैसे होते हैं ? उनकी श्रद्धा वह व्यवहार समकित है। व्यवहार समकित में श्रद्धावान परमात्मा कैसे होते हैं ? उसकी व्याख्या है। परमात्मा के शरीर को रोग नहीं होता। शरीर होता है, त्रिकाल ज्ञान होता है, अनन्त आनन्द होता है, शरीर होने पर भी उन्हें रोग नहीं होता।

मुमुक्षु : यहाँ केवलज्ञान है ऐसा माने, यहाँ रोग है ऐसा माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; बिल्कुल एकदम तत्त्व का विरोध है। ऐसी सब असाता रह जाये तो उनकी पवित्रता नहीं थी और उन्हें जीव की दशा भी नहीं थी, उसका भान नहीं उसे। सम्प्रदाय में तो बड़ा विरोध है न ? भगवान को रोग था, दवा लाये, सब किया। सब कल्पित बाते हैं।

पूर्ण आत्मदशा जहाँ पूर्ण आनन्द प्रगट हो, उसके शरीर को असाता का इतना उदय, इतना नहीं होता कि जिसमें रोग आवे। असाता की प्रकृति होती है परन्तु वह तो बड़े समुद्र में जैसे चुटकी भर राख डाले, ऐसे असाता के रजकण होते हैं। परम पवित्र आत्मा जहाँ पूर्ण हुआ, उनका शरीर परमौदारिक (होता है)। उन्हें रोग नहीं हो सकता। रोग मानते हैं, उन्हें परमात्मा की खबर नहीं।

मुमुक्षु : उसे अघातिकर्मों का ज्ञान बराबर नहीं हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अघाति का नहीं, निर्मलपर्याय का भी नहीं। पूर्ण निर्मल हो तो कर्म का रस कितना घट जाये, (इसकी खबर नहीं)। उसे एक का भी (ज्ञान) नहीं। अजीव का नहीं, जीव का नहीं, संवर-निर्जरा का नहीं और मोक्ष का नहीं। वास्तव में एक भी तत्त्व नहीं। ऐई ! जिन्हें आत्मा के ध्यान द्वारा अघातिकर्म का रस बहुत मन्द पड़ गया है, असाता का उदय तो अत्यन्त मन्द पड़ गया है। अनन्त-अनन्त साता रखते हैं। ऐसी पवित्रता के परिणाम को भी पहिचाना नहीं कि ऐसे परिणाम हों, वहाँ असाता हो नहीं सकती। ऐसी बात जरा सूक्ष्म है। वास्तव में तो नवतत्त्व में भूल है। समझ में आया ?

यह दसवाँ बोल आया है। परमात्मा शरीरी होने पर भी, उन्हें शरीर में रोग नहीं होता।

(१०) सादि-सनिधन, मूर्त इन्द्रियोंवाली विजातीय नर-नारकादि विभावव्यंजनपर्याय का जो विनाश, उसी को मृत्यु कहा गया है। भगवान को मृत्यु नहीं है। मृत्यु उसे कहते हैं कि भवान्तर होकर दूसरा जन्म हो तो मृत्यु कहते हैं और दूसरा जन्म है नहीं। ऐसी आत्मा का पूर्ण परमात्मदशा यहाँ केवलज्ञान में होती है, ऐसा कहते हैं। शरीर में। अभी लोगों को परमात्मा कौन ? उनकी श्रद्धा क्या ? स्वभाव से ऐसा ही परमात्मा मैं हूँ, ऐसे दृष्टिवन्त को ऐसे परमात्मा की व्यवहारश्रद्धा होती है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? रवजीभाई ! पूर्व में सब सुना है न ? रोग होता है, अमुक होता है, ऐसा सब। ऐ.. मलूपचन्दभाई ! तुम्हारे गाँव में तो बहुत सुना था।

(११) अशुभकर्म के विपाक से जनित, शारीरिक श्रम से उत्पन्न होनेवाला जो दुर्गन्ध के सम्बन्ध के कारण, बुरी गन्धवाले जलबिन्दुओं का समूह, वह स्वेद है। भगवान को स्वेद-पसीना नहीं होता। महा अनन्त बल के धनी आत्मा और शरीर में भी अनन्त बल है। समझ में आया ? ऐसा परमात्मा का वास्तविक स्वरूप ही भी क्या है ? अरिहन्त किसे कहना ? ऐसे अरिहन्त ऐसा बोले—णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... और कहे उन्हें रोग होता है, और वे आहार लेते हैं, उन्हें तृषा लगती है। और वे पहले समय में परमाणु ग्रहण करते हैं और दूसरे समय में छोड़ते हैं। ऐई ! उसने परमात्मा को पहिचाना ही नहीं है। इसलिए व्यवहार श्रद्धा सच्ची नहीं है। उसकी निश्चय श्रद्धा भी सच्ची नहीं होती। समझ में आया ? उन्हें स्वेद नहीं होता।

(१२) अनिष्ट की प्राप्ति (अर्थात्, कोई वस्तु अनिष्ट लगना), वह खेद है। अनिष्ट लगना। खेद-बेद भगवान को कुछ नहीं है। अनिष्ट कोई है नहीं। पूर्ण निष्ट आत्मा, पूर्णानन्द दशा प्रगट हुई। (अनिष्ट) कुछ है नहीं। इष्ट की प्राप्ति हो गयी, अनिष्ट का नाश हो गया। उन्हें खेद नहीं होता।

(१३) सर्व जनता के (जनसमाज के) कानों में अमृत उंडेलनेवाले सहज चतुर कवित्व के कारण,... अब कहते हैं कि ऐसा अभिमान नहीं होता, ऐसा कहते हैं। ऐसा मधुर, मीठा कवित्व हो कि सर्व जीव को **कानों में अमृत उंडेलनेवाले सहज चतुर कवित्व...** उसके कारण अभिमान कि आहा..हा..! मेरा कैसा कण्ठ है, ऐसा भगवान को नहीं होता। वे तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा हैं। ध्वनि तो ऐसी अलौकिक निकलती है कि लोगों के कर्ण में अमृत उडेलते हों। कर्ण में मानो अमृत उडेलते हों, ऐसी भगवान

तीर्थंकरदेव की वाणी होती है परन्तु वह तो जड़ की दशा है। आत्मा को और उसे कोई सम्बन्ध नहीं है। सम्यग्दृष्टि भी उस कण्ठ का अभिमान नहीं करता तो सर्वज्ञ परमात्मा को तो होता नहीं।

सहज (सुन्दर) शरीर के कारण,... शरीर की सुन्दरता, कोमलता हो, उसका अभिमान हो जाता है। हमारा शरीर दूसरों से अच्छा है। धूल भी नहीं (अच्छा), वह तो मिट्टी है। उसमें अच्छा किसे कहना? परमात्मा का शरीर तो सुन्दर ऐसे परमौदारिक। इन्द्र हजार नेत्रों से देखे तो तृप्ति न हो, तथापि शरीर की सुन्दरता का उसे अभिमान नहीं है। आत्मा आनन्दमूर्ति का जहाँ पूर्ण अनुभव हुआ, नीचे भी आनन्द का जहाँ सम्यक् में अनुभव होने पर शरीर की सुन्दरता का अभिमान ज्ञानी को नहीं होता। शरीर की सुन्दरता का अभिमान हो, तब तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? वह तो मिट्टी, जड़-धूल है। उसकी सुन्दरता में तो राग है। उसका अभिमान नहीं हो सकता। कितने ही ऐसे होते है न कि शरीर में ऐसी सुन्दरता के कारण मानो सेठिया की तरह चले, शरीर ऐसे-ऐसे... एक था। सेठ जैसी चाल करता, इसलिए सेठ का नाम पड़ गया। कहो, समझ में आया?

सहज (उत्तम) कुल के कारण,... अच्छे उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ हो, उसका अभिमान (करे)। किसका कुल? आत्मा को कुल कैसा? आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा का कुल क्या? ऐसे तो कहा है, हों! 'ए अम कुलवत रीत'

मुमुक्षु : वह और अलग प्रकार से।

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्दघनजी में आता है न?

मुमुक्षु : वह शुद्धता की अपेक्षा से....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो शुद्धता की अपेक्षा से। हे नाथ! इस पवित्रता के पन्थ में पूरे पड़े, इस पन्थ में चलनेवाले आपके कुल की टेकवाले हम हैं। वह तो वीतरागता के पन्थ में चलने की कुल की टेक की बात है। यह तो कुल में जन्म हुआ, इसका अभिमान (करे) कि हम ऐसे ऊँचे कुल में जन्मे हुए। कहो, सेठी! इसका अभिमान नहीं होता, कहते हैं।

सहज बल के कारण,... शरीर में बल इतना अधिक होता है, सहज प्राकृतिक, हों! उसका भी उन्हें अभिमान नहीं होता। **सहज ऐश्वर्य के कारण,...** ईश्वरता-महत्ता। जिन्हें

इन्द्र नमते हैं, तथापि ईश्वरता का उन्हें अभिमान नहीं है। और **आत्मा में जो अहंकार की उत्पत्ति, वह मद है।** वह मद नहीं होता। आहा..हा..! अतीन्द्रिय भगवान आनन्दस्वरूप आत्मा का जहाँ भान हो तो भी यहाँ तो कहते हैं कि आठ मद नहीं होते। जहाँ धर्म की दशा प्रगटी, वहाँ मैं आत्मा आनन्द हूँ, ज्ञान हूँ, शान्ति हूँ—ऐसा जिसे धर्म की दशा का भान हो, उसे भी आठ मद नहीं होते। जातिमद, कुलमद, बल, रूपमद, वह तो जड़ का अभिमान, मिथ्यात्व का सूचक है। समझ में आया? शरीर के अवयवों की सुन्दरता का अभिमान, वह जड़ का अभिमान है, वह तो मूढ़ जीव है। आहा..हा..! बाहर में लगता हो, बड़ा, मानो मानधाता जैसे दिखायी दे। अन्दर में उसके जड़ का अभिमान मूढ़ में है, बड़ा मूढ़ जैसा है। बड़ा बैल जैसा है, ऐसा कहते हैं। बड़ा सांड होता है न? शरीर मजबूत और बड़ा। उसे कुछ भान नहीं हो तो सिर मारे और ऐसा तूफान करे... देखो न! लड़के भी तूफान करते हैं। लो! वापस दो आये हैं। ....अन्दर कुछ बाँटना है न? कषाय... कषाय... कषाय... कहते हैं, ऐसा मद उसे नहीं होता।

(१४) मनोज्ञ (मनोहर सुन्दर) वस्तुओं में परम प्रीति... ऐसी चीज़ देखकर मन की प्रसन्नता हो और रति हो, वह रति भगवान को नहीं होती। **(१५) परम समरसीभाव की भावना-रहित जीवों को...** आत्मा आनन्द और वीतरागस्वरूप है, ऐसी **(परम समताभाव के अनुभवरहित जीवों को) कभी पूर्व काल में न देखा हुआ देखने के कारण होनेवाला भाव, वह विस्मय है।** विस्मय... विस्मय। विस्मय लगे। किसका विस्मय, बापू! आहा..हा..! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का भान हो तो किसी को देखकर विस्मय नहीं होता। अत: भगवान को तो विस्मय नहीं होता।

(१६) केवल शुभकर्म से देवपर्याय में जो उत्पत्ति,... भगवान को तो कोई जन्म है नहीं। देवपर्याय में भी उत्पत्ति नहीं है। भगवान मरकर देव में जायें, ऐसा है? वे तो अरिहन्त परमात्मा पूर्ण हो गये। देह छूटकर सिद्ध हो जानेवाले हैं। **अशुभकर्म से नारकपर्याय में जो उत्पत्ति,...** महापुण्य किया हो तो देव में उपजे, तो भगवान को तो वह है नहीं। जन्म ही नहीं है। पाप किये हों—हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, माँस, शराब (खाने-पीनेवाले) मरकर नरक में जाते हैं। ऐसे भाव भगवान को तो होते नहीं; इसलिए उन्हें जन्म नहीं होता।

माया से तिर्यंचपर्याय में... कपटी जीव इस ढोर में उपजते हैं। आड़ा शरीर होता है न, आड़ा? माया, कपट और कुटिलता से बहुत वक्रता की हो, वे सब मरकर ढोर में

जानेवाले हैं। भगवान को ऐसा जन्म नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? यहाँ बड़ा चतुर करोड़पति बनिया गिना जाता हो। मरकर ढोर में जाये।

मुमुक्षु : मायाचार करता हो तो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; माया, कपट, कुटिल, दम्भ, वक्रता, अडोडाई, अन्तर में उसके फलरूप से उसे पशु का जन्म अनन्त बार होता है। भगवान को कुछ है नहीं।

शुभाशुभ मिश्रकर्म से... मनुष्य होता है। कुछ शुभ हो और कुछ अशुभ हो तो मनुष्य होता है। वह भगवान को है नहीं; इसलिए भगवान को जन्म नहीं है। कहो, समझ में आया? कितने ही लोग कहते हैं न कि भगवान ऐसे होते हैं, परन्तु जब बहुत पाप बढ़े तो अवतार लेते हैं। ऐसा नहीं है। भगवान को यह अवतार नहीं होता।

मुमुक्षु : भक्तों का दुःख मिटाने के लिये अवतार लेते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख किसका मिटावे? आहा..हा..! भक्तों का दुःख होता ही नहीं। यह सब बातें कल्पना हैं। परमात्मदशा जहाँ हुई, उसे फिर उत्पत्ति में जन्म है ही नहीं। उसे अवतार नहीं हो सकता। पश्चात् बहुत काल में मोक्ष में से भी वापस आते हैं, ऐसा कहते हैं न? ऐसा नहीं है।

(१७) दर्शनावरणीयकर्म के उदय से जिसमें ज्ञानज्योति अस्त हो जाती है, वही निद्रा है। निद्रा में भान नहीं रहता। ऐसी निद्रा भगवान को नहीं होती।

मुमुक्षु : निद्रा से तो शान्ति होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी शान्ति नहीं होती। ज्योति अस्त हो जाती है, वहाँ ज्ञान ढँक जाता है।

(१८) इष्ट के वियोग में विक्लवभाव (घबराहट) ही उद्वेग है—इन (अठारह) महादोषों से तीन लोक व्याप्त है। वीतराग सर्वज्ञ इन दोषों से विमुक्त हैं। लो! ये अठारह दोष नहीं होते। श्वेताम्बर में अठारह दोष दूसरे कहते हैं। ये अठारह दोष दूसरे हैं। दोनों बड़ा अन्तर है। समझ में आया? यह तो सनातन सत्य वीतरागमार्ग अनादि से चला आता है, उसकी रीति और उसके परमात्मा ऐसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह कहे न, भाई! महावीर तो दोनों के एक हैं न! ऐसा कहते हैं। एक-एक बात में बहुत अन्तर है। वीतराग का, परमात्मा का, अरिहन्त का स्वरूप सन्तों ने कहा और जो अनादि है, उससे

दूसरे सम्प्रदाय में अन्तर है। समझ में आया ? श्वेताम्बर में और स्थानकवासी में दोनों में विपरीत है। देव के स्वरूप की बात ही विपरीत है। ऐई ! चिमनभाई ! आहा..हा.. !

अब कोष्ठक में लिखा है। **(वीतराग सर्वज्ञ को द्रव्य-भाव घातिकर्मों का अभाव होने से,...)** द्रव्य अर्थात् जड़कर्म, और भाव अर्थात् विकार आदि। **(उन्हें भय, रोष, राग, मोह, शुभाशुभ चिन्ता,...)** यह शुभाशुभ चिन्ता। **(खेद, मद, रति, विस्मय, निद्रा तथा उद्वेग...)** ग्यारह बोल हुए। ये ग्यारह बोल हैं। अठारह में से ग्यारह बोल। पहले इतना आया, घातिकर्म का द्रव्य-भाव का अभाव होने से ये नहीं होते, ऐसा सिद्धान्त सिद्ध किया।

और उनको समुद्र जितने सातावेदनीय कर्मोदय के मध्य,... भगवान को तो समुद्र जैसा सातावेदनीय का उदय है। **बिन्दु जितना असातावेदनीय कर्मोदय वर्तता है, वह मोहनीयकर्म के बिल्कुल अभाव में, लेशमात्र भी क्षुधा या तृषा का निमित्त कहाँ से होगा ?** भगवान को क्षुधा-तृषा नहीं होते। **नहीं होगा, क्योंकि चाहे जितना असातावेदनीयकर्म हो, तथापि मोहनीयकर्म के अभाव में दुःख की वृत्ति नहीं हो सकती, तो फिर यहाँ तो जहाँ अनन्तगुने सातावेदनीयकर्म के मध्य, अल्पमात्र (अविद्यमान जैसा) असातावेदनीयकर्म वर्तता है, वहाँ क्षुधा-तृषा की वृत्ति कहाँ से होगी ?** इन दो बोल को सिद्ध किया। पहले ग्यारह को (सिद्ध किया था)। ग्यारह क्यों नहीं, ऐसा सिद्ध किया था। ये दो क्यों नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया ?

क्षुधा-तृषा के सद्भाव में अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि कहाँ से सम्भव होंगे ? क्षुधा-तृषा हो तो अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य कहाँ से होंगे। **इस प्रकार वीतरागसर्वज्ञ को क्षुधा (तथा तृषा) न होने से उन्हें कवलाहार भी नहीं होता।** वे ग्रास लें और आहार करें, ऐसा नहीं होता। दवा लें और औषधि खायें, ऐसा नहीं होता। **कवलाहार के बिना भी उनके (अन्य मनुष्यों को असम्भावित ऐसे),...** साधारण को असम्भवित। **सुगन्धित, सुरसयुक्त, सप्त धातुरहित, परमौदारिकशरीररूप नोकर्माहार के योग्य, सूक्ष्म पुद्गल प्रतिक्षण आते हैं...** पुण्य के कारण उनके शरीर में इतने सब अच्छे रजकण आते हैं। **इसलिए शरीरस्थिति रहती है।** तेरह बोल हुए।

और पवित्रता तथा पुण्य का ऐसा सम्बन्ध होता है, अर्थात् घातिकर्मों के अभाव को और शेष रहे अघातिकर्मों का ऐसा सहज सम्बन्ध होता है कि वीतरागसर्वज्ञ

को उन शेष रहे अघातिकर्मों के फलरूप परमौदारिकशरीर में जरा, रोग तथा स्वेद नहीं होते। ऐसा। इन तीन को सिद्ध किया। पहले ग्यारह को, पश्चात् दो को, पश्चात् तीन को सिद्ध किया कि क्यों नहीं, ऐसा। भगवान को शरीर होने पर भी जरा नहीं होती, रोग नहीं होता और पसीना नहीं होता। **और केवली भगवान को भवान्तर में उत्पत्ति के निमित्तभूत शुभाशुभभाव न होने से, उन्हें जन्म नहीं होता और जिस देहवियोग के पश्चात् भवान्तरप्राप्तिरूप जन्म नहीं होता, उस देहवियोग को मरण नहीं कहा जाता।** ग्यारह। ग्यारह और दो; तेरह और दो; पन्द्रह और दो; सत्रह। अठारह हुए न? जरा, रोग, और पसीना, तीन आये, देखो न! ग्यारह और दो तेरह; और तीन, सोलह; और दो, अठारह। जन्म और मरण, पण्डितजी ने अठारह की सिद्धि की।

(इस प्रकार वीतरागसर्वज्ञ अठारह दोषरहित हैं।) इसी प्रकार (अन्य शास्त्र में गाथा द्वारा) कहा है कि — देखो

सो धम्मो जत्थ दया सो वि तवो विसयणिग्गहो जत्थ।
दस-अट्ठ-दोस-रहिओ सो देवो णत्थि सन्देहो।।

कहो जेठाभाई! '**वह धर्म है, जहाँ दया है;...** रागरहित अहिंसा स्वभाव प्रगटे, उसे यहाँ दया कहते हैं। धर्म, वह अहिंसा है। अहिंसा, वह राग की अनुत्पत्ति है। आत्मा में वीतरागपने की उत्पत्ति और राग की अनुत्पत्ति को यहाँ अहिंसा और दया धर्म कहा जाता है। समझ में आया? **वह तप है, जहाँ विषयों का निग्रह है;...** मुनिपना उसे कहते हैं कि जो पाँचों इन्द्रिय के विषय का निग्रह होकर, अनीन्द्रिय आनन्द का उग्र वेदन है, उसे मुनिपना और तप कहा जाता है। समझ में आया? जिसमें पाँच इन्द्रिय के विषयों का निग्रह नहीं होता, अनीन्द्रिय दशा प्रगट नहीं होती, उसे तप नहीं कहते। उसे लंघन कहते हैं। समझ में आया? यह वर्षीतप करते हैं न।

मुमुक्षु : उसमें भी अमुक अंश विषय का निग्रह तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं होता। अनीन्द्रिय की दृष्टि बिना इन्द्रिय का निग्रह हो कहाँ से? अनीन्द्रिय भगवान आत्मा है, उसकी जहाँ दृष्टि का भान नहीं। इन्द्रिय का निग्रह तो उसे कहते हैं (कि) जड़ इन्द्रिय, भावेन्द्रिय, और इन्द्रिय के विषय, इन तीनों का आश्रय छोड़कर अतीन्द्रिय का आश्रय ले, तब इन्द्रिय को जीतना कहा जाता है। समयसार की ३१वीं गाथा। '**जो इंदिये जिणित्ता**'

मुमुक्षु : सब अर्थ अलग।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब अर्थ अलग है। कितने अर्थ बदलोगे? एक व्यक्ति ऐसा कहता था। क्या करें? भाई! तुझे खबर नहीं।

भगवान आत्मा... मुनिपना और तप तो उसे कहते हैं कि जिसमें खण्ड इन्द्रिय / भाव-इन्द्रिय, जड़-इन्द्रिय और उनके विषय अर्थात् वाणी आदि, इन सबका लक्ष्य छोड़कर, अतीन्द्रिय ऐसे भगवान आत्मा का आश्रय करके रहे, उसे यहाँ इन्द्रिय का जीतनेवाला कहा जाता है। आहा..हा..! गजब! समझ में आया? **वह देव है, जो अठारह दोषरहित है,...** तीन बोल रखे हैं न? देव तो उन्हें कहते हैं, जिनमें अठारह दोष नहीं होते। **इस सम्बन्ध में संशय नहीं है।'** लो!

और श्री विद्यानन्दिस्वामी ने (श्लोक द्वारा) कहा है कि —

अभिमत-फल-सिद्धे-रभ्युपायः सुबोधः,
स च भवति सुशास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैः,
न हि कृत-मुपकारं साधवो विस्मरन्ति।।

सर्वज्ञ परमेश्वर, परमात्मा अठारह दोषरहित, ऐसे अरिहन्त को बतलाया। अब कहते हैं कि उन अरिहन्त की कृपा का फल मुक्ति है। ऐ.. चन्दुभाई! वापिस कृपा हो गयी!

मुमुक्षु : वीतरागता में से कृपा कहाँ से आयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : कृपा का अर्थ यह कि परमात्मा पूर्ण स्वरूप सर्वज्ञ के ज्ञान में इस आत्मा का ज्ञान भासित हुआ कि इस क्षण में इसे यह हुआ। यह भगवान की करुणा-कृपा है। 'करुणा हम पावत है तुमकी, बात रही सुगुरुगम की।' भगवान की करुणा अर्थात्? सर्वज्ञ परमेश्वर ने एक समय में तीन काल देखे, उनमें जिस समय धर्मी को आत्मज्ञान, दर्शन और अनुभव होता है, वह समय उनके ज्ञान में ऐसा वर्तता था कि इसे इस समय में हुआ, यह उनकी करुणा है। समझ में आया?

इष्टफल की सिद्धि का उपाय, सुबोध है... क्या कहते हैं? सम्यग्ज्ञान से बात प्रारम्भ की है। सम्यग्ज्ञान से आत्मा को सुबोध होता है। **इष्टफल की सिद्धि का उपाय, सुबोध है (अर्थात्, मुक्ति की प्राप्ति का उपाय, सम्यग्ज्ञान है);...** यहाँ से शुरु किया है।

समझ में आया? इष्टफल अर्थात् मुक्ति, उस मुक्ति की प्राप्ति का उपाय सुबोध है। **(अर्थात्, मुक्ति की प्राप्ति का उपाय, सम्यग्ज्ञान है);...** पूर्णानन्द की ऐसी मुक्ति, उसका उपाय तो सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती। कहो, समझ में आया?

सुबोध, सुशास्त्र से होता है;... कहो, एक ओर कहना शास्त्र से ज्ञान नहीं। क्या अपेक्षा है? भगवान की वाणी सम्यग्ज्ञान होनेवाले को वह वीतराग की वाणी ही निमित्त होती है, यह यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? जिसे आत्मज्ञान वस्तु हो, भगवान की वाणी में ऐसा आया था कि तेरा स्वरूप सच्चिदानन्द पूर्ण है। उस पर ध्यान लगा, तो तुझे ज्ञान होगा ही। वह ज्ञान हुआ, तब वीतराग की वाणी से हुआ—ऐसा व्यवहार से कहने में आता है।

मुमुक्षु : वाणी तो पुद्गल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल अर्थात् निमित्त हुई न? निमित्त। सम्यग्ज्ञान, ऐसा कहा उन्होंने, उस ओर का लक्ष्यवाला ज्ञान हुआ। पश्चात् उसे छोड़कर स्व का हुआ, तब उसे निमित्त कहने में आया। समझ में आया?

मुमुक्षु : एक ओर कहना (कि) होता नहीं, एक ओर कहना, होता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किस अपेक्षा से, यह समझना चाहिए न! आहा..हा..!

सर्वज्ञपद-एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जिसे तीन काल-तीन लोक ज्ञात हो, ऐसी ज्ञान की दशा का अस्तित्व, जिसने, अन्तर में वाणी आयी और स्वीकार किया, उसे अन्दर सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हो, उसमें वह जिनवाणी निमित्त कही जाती है, इसलिए वाणी से हुआ ऐसा कहा जाता है। कहो, समझ में आया? आहा..हा..! अज्ञानियों की वाणी निमित्त नहीं होती, ऐसा सिद्ध करना है। व्यवहार से तो ऐसा ही लिया जाता है न!

(मुक्ति की प्राप्ति का उपाय, सम्यग्ज्ञान है);.... ऐसा कहते हैं यहाँ, देखो! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन लेते सम्यग्ज्ञान से शुरु किया है। **(मुक्ति की प्राप्ति का उपाय, सम्यग्ज्ञान है);....** यहाँ से शुरु किया है। सम्यग्ज्ञान **सुबोध, सुशास्त्र से होता है;...** शब्द प्रयोग किया है, देखो! सुबोध को 'सु' है और शास्त्र को 'सु' है। सुबोध उसे कहते हैं कि जो आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण स्वरूप, जिसके अन्तर्ज्ञान में आवे, ऐसे ज्ञान को सुबोध कहा जाता है। कहो, समझ में आया? और वह **सुबोध, सुशास्त्र से होता है;...**

सुशास्त्र। कुशास्त्र नहीं। भगवान की वाणी के शास्त्र। आहा..हा..! इसे परखना पड़ेगा या नहीं? कि यह वीतराग के शास्त्र ज्ञानी के हैं और ये कल्पित हैं, ऐसा अन्तर किये बिना सुशास्त्र की परीक्षा इसे कहाँ से होगी? समझ में आया?

सुबोध, सुशास्त्र से होता है; सुशास्त्र की उत्पत्ति, आप्त से होती है;... इस सुशास्त्र की उत्पत्ति त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की ध्वनि से होती है। सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण पद को प्राप्त (हुए हैं)। शरीर बाकी है, अभी वाणी बाकी है। यह ध्वनि उठती है, वह शास्त्र है। उस सुशास्त्र से बोध होता है और बोध, वह मुक्ति का उपाय है और वह सुशास्त्र, वीतराग की वाणी से उत्पन्न होते हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी के अतिरिक्त सुशास्त्र उत्पन्न नहीं हो सकते। जिसने तीन काल-तीन लोक देखे और जाने नहीं, उसकी वाणी में सुशास्त्रपना कहाँ से आयेगा? धर्म का मूल सर्वज्ञ है, आता है न? समझ में आया? जिसने यह तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसी अपनी शक्ति आत्मा की थी, ऐसी जिसने प्रगट की है, उससे सुशास्त्र की उत्पत्ति होती है। कहो, निमित्त से कथन है न? शास्त्र की उत्पत्ति तो वाणी है, वाणी तो वाणी से होती है, परन्तु उसमें निमित्तपना सर्वज्ञपने का था न? समझ में आया?

मुमुक्षु : आज तो मुश्किल से लाईन में नम्बर आया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई नम्बर नहीं आता किसी का। यहाँ तो जिसका है, उसका है।

आहा..हा..! आत्मा की पूर्णानन्ददशा, ऐसी जो मुक्ति है, उसका कारण सम्यग्ज्ञान; सुबोध का कारण सुशास्त्र; सुशास्त्र की उत्पत्ति सर्वज्ञ के मुखारविन्द से आवे वह। आहा..हा..! कहो, समझ में आया इसमें? दूसरे, सर्वज्ञ से आये हुए शास्त्र नहीं तो वे शास्त्र नहीं। वीतराग के मुख में से निकले, वे शास्त्र कहलाते हैं, वे सुशास्त्र हैं। ऐई! चेतनजी! क्या कहना है? यह तो सब विवाद उठेगा। दोनों सम्प्रदाय के भगवान एक हैं। ए... हरिभाई! इनकार करते हैं। भगवान एक हैं नहीं। सच्चे भगवान तो जिन्हें एक समय में त्रिकाल ज्ञान (प्रगट हुआ है)। शरीर में रोग नहीं, क्षुधा नहीं, तृषा नहीं, ऐसे जो परमात्मा हैं, उनके मुख में से निकले हुए शास्त्र, उन्हें सुशास्त्र कहा जाता है। उनके अतिरिक्त के कल्पित शास्त्रों को कुशास्त्र कहते हैं। कुशास्त्र से बोध नहीं होता और बोध के बिना मुक्ति नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! इसे परीक्षा करनी पड़ेगी या नहीं? कहाँ गये तुम्हारे चिमनभाई नहीं आये? बुखार आता है? कहो, समझ में आया? अरे रे! भूले, मूल में भूले।

भगवान में भूले, इसे सब भूल पड़ी है। समझ में आया? कहो, देवजीभाई! कहाँ किसान? कहो, ओहो..हो..!

सुशास्त्र की उत्पत्ति, आप्त से होती है;... पूर्णानन्द और सर्वज्ञपद प्राप्त है, उनके मुख से वाणी निकले, उसे सुशास्त्र कहते हैं। उसके अतिरिक्त स्वयं अपनी कल्पना से करके बनाये हों, उन्हें शास्त्र नहीं कहा जाता। गजब बात, भाई! यह तो काम कठिन। लोगों के साथ रहना और अलग-थलग रहना! जेठाभाई! जेठाभाई पहले यहाँ सुनने आये थे तो भी भड़कते थे। अमरेली नहीं? कलोज की धर्मशाला में अमेरली। यह देखो! हमारे बड़े-बड़े दृष्टान्त दे कि चक्रवर्ती समकिती होता है, उसे ऐसा होता है। छह खण्ड का राज हो तो भी समकित हो। राज-वाज का स्वामी है नहीं। समकिती को यह नहीं होता। अज्ञानी राग का स्वामी मानता है। वह त्यागी हो तो भी राग का स्वामी माने तो वह मिथ्यात्व है और त्यागी नहीं तथा राग का स्वामी नहीं मानता और आत्मा का अनुभव हो, वह समकिती है। यह तो बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। पहले अमरेली ऐसा हुआ था। (संवत्) २००६ के वर्ष। बहुत वर्ष हो गये, हों! २१ वर्ष हुए।

मुमुक्षु : उससे पहले राजकोट में ही आते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पहले इतना सुना, तब ये भड़कते थे।

मुमुक्षु : तब खबर पड़ी।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब खबर पड़ी। किसी ने कहा.... कहो, समझ में आया? है बात ऐसी, हों! गुलाबचन्दभाई! यह वहाँ कहाँ सुनने मिले ऐसा है? वहाँ कलकत्ता में है यह?

मुमुक्षु : कलकत्ता में दुनिया.....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ अपने वीरचन्दभाई और ये पढ़ते हैं। दूसरे कोई पढ़ते हैं?

मुमुक्षु : वजुभाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वजुभाई खारा। ऐसा मार्ग है, बापू! इसे परीक्षा करनी पड़ेगी और बराबर पहिचान करनी पड़ेगी। जिसे मानना है, उनकी परीक्षा किये बिना माने? परमात्मा अरिहन्त कैसे होते हैं?

मुमुक्षु : आत्मा को मानने के बाद निमित्त का क्या काम है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इस आत्मा को माने कब ? यहाँ तो ऐसा कहते हैं। यह वाणी मिले और वाणी का ज्ञान हो, तब आत्मा का ज्ञान हो, इस प्रकार यहाँ बात है। समझ में आया ? सुशास्त्र की उत्पत्ति भगवान से और सुशास्त्र की उत्पत्ति से सुबोध (होता है) सुशास्त्र उससे कहते हैं कि देखो, यह आत्मा। भले परलक्ष्यी ज्ञान है, परन्तु ऐसा आता है, वह यहाँ तो सिद्ध करना है।

मुमुक्षु : परलक्ष्यी ज्ञान की कीमत क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कीमत नहीं है, वह तो होता है, इतनी बात है। होता है, इतनी बात है, बस!

मुमुक्षु : बिना कीमत की वस्तु हो, उसका काम क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह आये बिना रहता नहीं। सीधे सुने नहीं और सम्यग्दर्शन हो जाये, ऐसा कभी नहीं हो सकता। ऐई! अनुभव हो गया, फिर चाहे जो, उसे निमित्त से बात करो। समझ में आया ?

मुमुक्षु : अनुभव के पहले के लिये बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनुभव के लिये तो कहते हैं कि अनुभव किसे होता है ? सम्यग्ज्ञान किसे होता है ? सुशास्त्र से होता है। यहाँ निमित्तपने की बात है न ? उपादान स्वयं का है, उसे सुशास्त्र निमित्त होते हैं। कुशास्त्र निमित्त नहीं होते। सुशास्त्र की उत्पत्ति परमात्मा से होती है, सशरीरी भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर... आहा..हा..! ओमध्वनि खिरती है।

मुमुक्षु : स्वयं बोध हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं बोध ही है परन्तु यह स्वयं पहले तो दूसरे के निकट समझा, पश्चात् स्वयं बोध होता है। एक बार ज्ञानी की वाणी कान में न पड़ी हो और अपने आप समझ जाये, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसी वस्तु की मर्यादा है, तथापि उससे नहीं समझता, यह निश्चय है। अरे! गजब बातें, भाई! ऐई! अटपटी बातें हैं।

मुमुक्षु : एक ओर से कहे निमित्त अकिंचित्कर है और यहाँ कहते हैं, यही निमित्त होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह होता है, इसका ज्ञान कराया है, इसका ज्ञान कराया है। स्व-परप्रकाशक है। स्व-परप्रकाशक में भगवान की वाणी ही निमित्त होती है, ऐसे ये सर्वज्ञ परमेश्वर, इन्हें रोग है, क्षुधा है, तृषा है, अल्पज्ञ हैं, यह वाणी शास्त्र नहीं है।

मुमुक्षु : ये तो सब बाह्य बातें हैं, उनका क्या काम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्य बात, परन्तु परीक्षा निश्चय किये बिना बाह्य का निर्णय किये बिना अन्दर में किस जा सकेगा? इसके ख्याल में यह बात आये बिना (अन्दर किस प्रकार जा सकेगा)? इस ख्याल को बाद में छोड़ना है न? परन्तु ख्याल में पहली बात क्या है, वह तो आना चाहिए। भले संक्षेप में (आवे), कोई लम्बी बात नहीं। देव-परमात्मा पूर्ण होते हैं। समझ में आया?

(संवत्) १९७२ के वर्ष में जब विवाद उठा था, तब पहले यह आया था न हमारे? भगवान ने देखा वैसा होगा। (मैं कहा), भगवान ने देखा, भगवान जिसे बैठे (जँचे, स्वीकृत हुए) उसके भव भगवान ने देखे ही नहीं। यह वाणी कैसी आयी? यह क्या आया? १९७२ के वर्ष, हों! पचपन वर्ष हुए। यह भगवान को दिखे बिना एक भव घटेगा नहीं। किसकी वाणी है यह? किसकी है यह? कौन बोलता है यह? हमारे गुरु थे, बेचारे नरम व्यक्ति थे। उन्होंने कहा कानजी कहता है, वह बात सत्य है। नहीं तो उनकी तो ४४ वर्ष की दीक्षा। मूलचन्दजी थे तीखे, उनके सामने यह सब कहा। सरवा (गाँव) सरवा का जसदण दरबार का निवास था। वहाँ था, लो! (संवत्) १९७२ का फाल्गुन का महीना। यह भी फाल्गुन (चलता है)। आज क्या है? बारस। वह भी तेरस थी, लो! वीतराग की यह वाणी नहीं, सन्तों की वाणी ऐसी होती नहीं, कहा।

आगम की वाणी ऐसी होती है कि उसे अन्दर एकदम तोड़ डाले—राग नहीं, तू नहीं, अन्दर देख। समझ में आया? कर नहीं सकेगा, ऐसी वाणी होगी उनकी? कर सकेगा, ऐसी उनकी वाणी होती है। गजसुकुमार देखो! भगवान के निकट सुना, अभी मार्ग में तो सोनी की कन्या बहुत रूपवान थी, बहुत सुन्दर थी। अब वह भेजते हैं और यहाँ वह जाते हैं भगवान के पास। सुनकर प्याला फट गया अन्दर।

प्रभु! आपकी आज्ञा हो तो मैं मुनिपना लेना चाहता हूँ... जैसे सुख उपजे, वैसे करो, प्रतिबन्ध नहीं है। ऐसी भाषा आती है। वाणी तो कहाँ है। माता के निकट आज्ञा लेता है।

माता! आज्ञा दो, माँ! मुझे कहीं बात रुचती नहीं। मुझे कहीं सुहाता नहीं। राजकुमार, श्रीकृष्ण के भाई, वासुदेव के भाई। अर्धखण्ड, छह खण्ड में तीन खण्ड है न? महा सुन्दर और पाल-पोसकर बड़ा मान... मान... मान... हाथी के जैसा तालुआ होता है न! गजसुकुमाल ऐसा तो जिनका एकदम सुन्दर कोमल शरीर। आज मैं प्रभु की वाणी में सुनकर आया हूँ। मुझे आज्ञा दे, हों! अब मैं मुक्तिमार्ग में जाऊँगा। मुझे कहीं चैन नहीं पड़ता। मेरा आनन्द, मेरा आनन्द। कहा, भगवान के पास क्या सुना होगा उस समय? यह (दृष्टान्त) दिया था। तुमने क्या सुना है? ऐसे नहीं चलता, हमारे यहाँ ऐसा नहीं चलता। तब तो यह बात कहाँ थी? फाट... फाट... प्याला! आज्ञा लेकर आये और भगवान के पास भी माँगी ऐसी याचना... आपकी आज्ञा हो तो मैं द्वारिका के श्मशान में जाऊँ। राजकुमार सुन्दर शरीर, मक्खन जैसा शरीर। अभी तो ऐसे विवाह की तैयारी की हुई, प्रभु! दीक्षित होकर कहते हैं... प्रभु! आपकी आज्ञा होवे तो महाकाल श्मशान में अकेला जाऊँ। आहा..हा..! प्याला, पावर, प्रस्फुटित हो गया, देखो तो सही! ऐसी वाणी होती है कहा? ऐसी वाणी (होवे) रोते हुए जैसी? अपने को बात जँचती नहीं। हमें यह सम्प्रदाय नहीं चाहिए, वाड़ा नहीं चाहिए, शास्त्र की यह वाणी नहीं चाहिए, यह गुरु नहीं चाहिए। ऐई! वजुभाई! आहा..हा..! (संवत्) १९७२ के फाल्गुन की बात है।

यहाँ देखो न! आचार्य (कहते हैं) आहा..हा..! अरे! सुशास्त्र की उत्पत्ति गुरु-तीर्थंकर से होती है, सर्वज्ञ से होती है। **उनके प्रसाद के कारण आप्तपुरुष, बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य हैं...** भाषा देखो! उनके प्रसाद द्वारा। आहा..हा..! अरे! जिसे सर्वज्ञ पद जँचा! और सर्वज्ञ पद जिसे मिला, उसे जन्म-मरण नहीं होते। वह आगे बढ़कर एकावतारी आदि होकर मुक्ति प्राप्त करेगा। समझ में आया? आहा..हा..! जिसे सर्वज्ञ परमेश्वर की भेंट हुई, उनकी वाणी की भेंट हुई, उनके प्रसाद के कारण... देखो! किसका प्रसाद? भगवान के प्रसाद के कारण।

कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा न, भाई! हमारे गुरु ने हम पर अनुकम्पा करके, अनुग्रह करके, हमें प्रसादी दी। ५वीं गाथा (समयसार)। शुद्धात्म प्रभु! तू पवित्र आनन्दघन प्रभु है। वह आत्मा कहते हैं। इतना हमको उपदेश दिया, हम अपने में समा गये, और ऐसा निजपद है, उसे हम याद करते हैं। आहा..हा..! दूसरा सब भूल गये। कहो, समझ में आया? यह तो अजर प्याले की अगम की बातें हैं, भाई! यह धर्म कहीं लाल फेंटा जैसी

बात नहीं है। वीरों की बातें हैं। जिस मार्ग में वीर चढ़े, वे मार्ग से वापिस नहीं फिरेंगे, उन्हें वीर कहते हैं। ऐसा भगवान का मार्ग है।

यह तो कहते हैं कि **प्रसाद के कारण आप्तपुरुष, बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य हैं....** उसकी व्याख्या यह की। **(मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से...)** आहा..हा..! कोष्ठक में अर्थ किया, सीधा अर्थ न समझे न, (इसलिए)। **उनके प्रसाद के कारण...** ऐसा है न? **आप्तपुरुष, बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य हैं...** इसकी व्याख्या क्या? यह मूल भाषा तो अटपटी है। **उनके प्रसाद के कारण...** इसलिए अर्थ करना पड़ा। **(मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से...)** आहा..हा..! **(सर्वज्ञदेव, ज्ञानियों द्वारा पूजनीय हैं)...** ऐसा अर्थ हुआ। किसका अर्थ हुआ यह? **उनके प्रसाद के कारण...** भगवान के प्रसाद के कारण। वे भगवान, पुरुष / बुधजनों से पूजने योग्य हैं, ऐसा। शब्द तो यह है न? देखो! तीसरा पद है न? **स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैः** इस तीसरे पद की व्याख्या है। **पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैः** भगवान की कृपा से। उनकी वाणी मिली और भान हुआ, वह भगवान की कृपा हम मानते हैं, कहते हैं। कहो, भीखाभाई!

भगवन्त प्रसन्न हुए। ब्राह्मण नहीं आते? लक्ष्मी प्रसन्न। आटा माँगने आवें, तब बोले न! यहाँ भगवान प्रसन्न। जिनके निमित्त से अपना भगवान जागृत हुआ, वह भगवान की प्रसादी हमें मिली, ऐसा यहाँ कहते हैं। वह भगवान की कृपा का फल हमें मिला है। समझ में आया? बहुत अनन्त जन्म-मरण के झंझट गये और पूर्ण मुक्ति प्राप्त हो, यह तो परमात्मा की कृपा का फल है। देवजीभाई! देखो भाषा! विनयवन्त के वाक्य ऐसे होते हैं। आहा..हा..! श्रीमद् में आया है न 'वह तो प्रभु ने ही दिया।' भाई! ऐसा आता है न? 'वर्तूं चरणाधीन।' हे प्रभु! आपने हमें आत्मा दिया। अर्थात् आत्मा दिया जाता होगा किसी का? उन्होंने बतलाया कि यह आत्मा। तू जो राग और पुण्य को मान रहा है, वह आत्मा नहीं। ऐसा बताया, (तो) उन्होंने दिया, ऐसा कहा जाता है। व्यवहार से ही ऐसी है।

(मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से सर्वज्ञदेव, ज्ञानियों द्वारा पूजनीय हैं)... धर्मात्मा द्वारा सर्वज्ञदेव पूजनीय है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! जिसे आत्मा का भान हुआ, उसके द्वारा भगवान पूज्य है। अज्ञानियों को पूज्य नहीं है। आहा..हा..! समन्तभद्राचार्य कहते हैं और भगवान की स्तुति में आया है—हे प्रभु! अभव्य आपको नहीं नमता क्योंकि जो राग को अपना स्वरूप माननेवाला है, वह वीतराग को कैसे नमेगा? बाह्य से नमता है,

वह नमा ही नहीं है। जो रागरहित भगवान आत्मा का स्वभाव, उसे अन्तर में नमा नहीं, परिणमन नहीं, श्रद्धा का भान नहीं, वह प्रभु! आपको कैसे नमेगा? क्योंकि उसकी दृष्टि तो राग पर और विकल्प पर है। वह राग को नमा हुआ है। समझ में आया? आहा..हा..! गजब बात, भाई!

(सर्वज्ञदेव, ज्ञानियों द्वारा पूजनीय हैं)... यह अन्तिम तीसरी लाईन का अर्थ किया। अटपटा था, इसलिए अर्थ करना पड़ा। **क्योंकि किये हुए उपकार को साधुपुरुष (सज्जन) भूलते नहीं हैं।** समझ में आया? अपने अनुभवने में, समझने में जो निमित्त पड़ा, उसका उपकार ज्ञानी नहीं भूलते। समझ में आया? देखो! यह विद्यानन्दस्वामी का श्लोक है। विद्यानन्दस्वामी ब्राह्मण थे। मुनि हुए थे। **किये हुए उपकार को साधुपुरुष (सज्जन) भूलते नहीं हैं।** जिसका उपकार हुआ, उसे नहीं भूलते। और कहे उपकार किसी से होता नहीं। यह तो निश्चय से है परन्तु व्यवहार में जिसका निमित्त, उससे ज्ञात हुआ, उसका उपकार ज्ञानी नहीं भूलते। आहा..हा..! अपना भाव नहीं भूलते तो उपकारी का उपकार नहीं भूलते।

श्लोक-१३

और (छठवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक द्वारा सर्वज्ञ भगवान श्री नेमिनाथ की स्तुति करते हैं) :—

(मालिनी)

शतमखशतपूज्यः प्राज्यसद्बोधराज्यः,
स्मरति-रसुरनाथः प्रास्त-दुष्टाघयूथः।
पदनत-वनमाली भव्य-पद्मान्शुमाली,
दिशतु शमनिशं नो नेमिरानन्दभूमिः।।१३।।

(वीरछन्द)

शत इन्द्रों से वन्दनीय जो सम्यग्ज्ञान स्वराज्य विशाल।
लौकान्तिक देवों के स्वामी, अघ समूह का किया विनाश॥

श्रीकृष्ण भी जिन्हें नमें, जो भव्य-कमल को सूर्य समान।
आनन्दभू हे नेमिजिनेश्वर ! शाश्वत-सुख तुम करो प्रदान॥१३॥

***श्लोकार्थ :*—जो सौ इन्द्रों से पूज्य हैं, जिनका सद्बोधरूपी (सम्यग्ज्ञानरूपी) राज्य विशाल है, कामविजयी (लौकान्तिक) देवों के जो नाथ हैं, दुष्ट पापों के समूह का जिन्होंने नाश किया है, श्रीकृष्ण जिनके चरणों में नमे हैं, भव्यकमल के जो सूर्य हैं (अर्थात्, भव्योंरूपी कमलों को विकसित करने में जो सूर्य समान हैं); वे आनन्दभूमि नेमिनाथ (आनन्द के स्थानरूप नेमिनाथ भगवान), हमें शाश्वत सुख प्रदान करें॥१३॥**

श्लोक-१३ पर प्रवचन

---

१३ वाँ। **और (छठवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक द्वारा सर्वज्ञ भगवान श्री नेमिनाथ की स्तुति करते हैं) :—**

शतमखशतपूज्यः प्राज्यसद्बोधराज्यः,
स्मरति-रसुरनाथः प्रास्त-दुष्टाघयूथः।
पदनत-वनमाली भव्य-पद्मान्शुमाली,
दिशतु शमनिशं नो नेमिरानन्दभूमिः॥१३॥

नेमिनाथ भगवान की स्तुति करते हैं। मुनि स्वयं ब्रह्मचारी हैं न? पद्मप्रभमलधारिदेव, ब्रह्मचारी तीर्थंकर को स्मरण करके नमन करते हैं। समझ में आया? **जो सौ इन्द्रों से पूज्य हैं,...** सौ इन्द्रों से पूज्य हैं। **शतमखशतपूज्यः सौ इन्द्रों**। देखो! सौ इन्द्र इसमें ही आते हैं। दूसरे में-श्वेताम्बर में चौसठ आते हैं। सौ इन्द्र पूर्ण, ऐसों से नेमिनाथ भगवान पूज्य हैं। **जिनका सद्बोधरूपी (सम्यग्ज्ञानरूपी) राज्य विशाल है,...** जिनका ज्ञान... पहले पर से पूज्य लिया। पश्चात् स्व का लिया। **जिनका (सम्यग्ज्ञानरूपी) राज्य विशाल है,...** तीन काल-तीन लोक जान जाये, ऐसा विशाल जिनका राज्य अन्तर में है। सम्यग्ज्ञान, वह जिनका राज्य है। तीन काल, तीन लोक को जिन्होंने जान लिया, ऐसा जो सम्यग्ज्ञान, केवलज्ञान जिनका राज्य है।

कामविजयी देवों के जो नाथ हैं,... ब्रह्मचारी हैं न, इसलिए ये अर्थ किये।

लौकान्तिक देव हैं न ? वे ब्रह्मचारी होते हैं। उन्हें इन्द्राणी, देवी नहीं होती, उनका आठ सागर का आयुष्य है, पाँचवें देवलोक में, आठ सागरोपम। आठ ही है। ऐसे लौकान्तिक देव कामविजयी हैं। वे देव काम के विजेता हैं। उन्हें देवी-स्त्री और भोग नहीं होते। आहा..हा.. ! देव, तथापि... आहा..हा.. ! वे सब एकावतारी हैं। पाँचवें देव के लौकान्तिक देव एकावतारी हैं। एक अन्तिम मनुष्य देह करके मुक्ति में जानेवाले हैं। ऐसे कामविजयी देवों के जो नेमिनाथ भगवान नाथ हैं।

दुष्ट पापों के समूह का जिन्होंने नाश किया है,... नेमिनाथ भगवान। **श्रीकृष्ण जिनके चरणों में नमे हैं,...** पदनत वनमाली, वनमाली कृष्ण। **जिनके चरणों में नमे हैं,...** कृष्ण और वासुदेव, बलदेव, नेमिनाथ भगवान **भव्यकमल के जो सूर्य हैं (अर्थात्, भव्योंरूपी कमलों को विकसित करने में जो सूर्य समान हैं);...** नेमिनाथ। निमित्त लेना है न, वह ऊपर कहा था तद्नुसार। **(भव्योंरूपी कमलों को विकसित करने में जो सूर्य समान हैं); वे आनन्दभूमि नेमिनाथ (आनन्द के स्थानरूप नेमिनाथ भगवान), हमें शाश्वत सुख प्रदान करें।** लो, निमित्त से बात लेनी है। उनसे हुआ इसलिए निमित्त है न ? **हमें शाश्वत सुख प्रदान करें।** ऐसा कहकर मांगलिक किया है और स्तुति की है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)